B.Ed.part-1,Paper-Vlll B,
Presented by Dr.Pallavi,
Topic- Dhyan,Samadhi,I

6.5 ध्यान (Dhyan)

ध्यान पूर्ण एकाग्रता की अवस्था है। महर्षि पतंजलि ने ध्यान की परिभाषा इस प्रकार दी है ।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् (पा० यो० द० 3-2)

जिस वृत्ति में मन को एकाग्र किया जाता है उसका निरंतर ध्यान लगा रहना है। धारणा का अभ्यास करते-करते ऐसी स्थिति आ जाती है कि मन इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है। ध्यान की इस अवस्था में मन की संपूर्ण एकाग्रता ध्येय की ओर होता है। उसमें लेश मात्र भी विक्षेप नहीं होता है । धारणा का अभ्यास करते करते ऐसी स्थिति आ जाती है, जब मन की अवस्था ध्यान की इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है । अतः ध्यान की कोई अलग से विधि नहीं होती है। यह अवस्था धारणा के अभ्यासों के फलस्वरूप प्राप्त हो जाता है। अत: कर सकते हैं कि ध्यान धारणा की ही उच्च अवस्था है।

चुंकि धारणा द्वारा ही हम ध्यान तक पहुंचते हैं। अत: ध्यान का अपना कोई अलग अअभ्यास नहीं होता है। जब हम यह कह सकते हैं कि हम "ध्यान" कर रहे हैं, तो उसका तात्पर्य है धारणा कर रहे हैं । ध्यान की अवस्था में कौन कहेगा और किससे कहेगा क्योंकि उस स्थिति में केवल ध्येय की प्रतीति रह जाती है । हमें यह तक ख्याल नहीं रह जाता है कि हम कुछ कर रहे हैं क्योंकि यह ख्याल आना भी ध्यान का टूटना
होगा। उस अवस्था में वह ध्यान नहीं रह जाएगा। वस्तुतः घ्यान की स्थिति में मन को कहीं और जाने की कोई संभावना नहीं रह जाता है।
अब हम ध्यान के उन सामान्य नियमों को जानेगे, जिनके पालक से साधक आसानी से ध्यान की ओर प्रवृत्त होता है-

(1) समय :-सुबह 4 से 6 बजे का समय ध्यान के लिए सर्वोत्तम है। इस समय को ब्रहम मुहूर्त के नाम से जाना जाता है। यह दिन का सर्वाधिक शांत समय होता है। इस समय कोलाहल और ब्रहम विक्षेप-न्यूनतम होता है। इस समय शरीर और मन दोनों सर्वाधिक शांत और शिथिल होते हैं।

(2) भोजन :-हमें ध्यान के अभ्यास में भी इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि ध्यान का
अभ्यास भोजन के पहले या दो-तीन घंटे बाद करना चाहिए। भोजन सुपाच्य तथा हल्का हो। ध्यान के समय पेट जितना हल्का और खाली रहे. उतना हो अच्छा है।

(3) अवधि :-यह मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह आरंभ में अति उत्साही रहता है। अत: लोग प्राय: शुरू में अधिक समय देते हैं, जो धीरे-धीरे कम होता जाता है। परन्तु यह उचित नहीं है। अपनी सुविधानुसार समय निर्धारित कर नियमित रूप से उतना समय देना ही लाभकारी होता है। इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु नियमितता एवं निरंतरता का पालन आवश्यक है। यदि 15 मिनट भी रोज अभ्यास किया जाए, तो पर्याप्त रूप से प्रगति हो सकती है।

(4) वस्त्र :-हल्के एवं डीले-ढाले वस्त्र होने चाहिए। जो शरीर पर कहीं कसे हुए न हो। शरीर
पर कम-से-कम वस्त्र होने चाहिए। मौसम के अनुसार शरीर को ढंके अथवा खुला रखें। यदि मच्छर अथवा मक्खी का प्रकोप ज्यादा हो तो आवश्यकतानुसार मच्छरदानी का प्रयोग करें।

(5) अभ्यास का स्थान :-ध्यान का अभ्यास शांत तथा स्वच्छ एवं हवादार कमरे में उपयुक्त

रहता है। सीधे जमीन के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए। इसके लिए दरी अथवा कम्बल का प्रयोग उचित रहता है। वैसे खाली कमरा सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। अगर ऐसा न हो तो कमरे में कम-से-कम सामान होना चाहिए।

(6) निद्रा :-ध्यान के अभ्यास में नींद बहुत बड़ी बाधा है। विशेषकर यदि स्वाभाविक नींद पूरी नध हो और ध्यान के लिए बैठ जाया जाए तो निद्रा का प्रकोप ध्यान पर पड़ता हैं । अतः स्वाभाविक नींद में एकाएक हस्तक्षेप करने के बदले, उसमें धीरे-धीरे बदलाव लाया जा सकता है ।
(7) सजगता :-सही तौर पर हर स्थिति में मानसिक सजगता ही ध्यान का सार तत्व है। बिना पूर्ण सजगता के ध्यान नहीं किया जा सकता है। ध्यान और निंद्रा दोनों अलग-अलग प्रकार की चीजें होती हैं। निद्रा को ध्यान समझने की गलती नहीं करनी चाहिए, क्योंकि निद्रा में सजगता नहीं होती है। जबकि ध्यान में पूर्ण रूप से सजग रहना आवश्यक है। सदा यह सजगता ध्येय के प्रति होती है। यह उन अभ्यासों की परिणति है, जो साधक आसनों के अभ्यास से ही प्रारंभ होती है। साधक जैसे-जैसे आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि की ओर बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे सजगता घनीभूत होती जाती है।

(8) शारीरिक शिथिलता :-शारीरिक शिथिलता के आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर को शिथिल किया जाता है। यह तभी हो सकता है जब शरीर के कड़ेपन तथा तनाव से साधक पूरी तरह से मुक्त हों। शिथिलीकरण के आसनों में शवासन सर्वाधिक लाभकारी है। शिथिलीकरण में शरीर को पूरी तरह से भुला देना होता है।

(9) मानसिक शिथिलीकरण :-ध्यान के लिए, न सिर्फ शारीरिक शिथिलीकरण, बल्कि मानसिक शिथिलीकरण भी आवश्यक है। मानसिक शिथिलीकरण इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य ईर्ष्या, घृणा, लोभ, द्वेष तथा इसी प्रकार की अन्य भावनाओं से घिरे रहते हैं। जिनके कारण ध्यान की दिशा में प्रगति करना कठिन होता है। अतः ध्यान के अभ्यास के पूर्व अन्य अभ्यासों यथा आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार आदि के अभ्यास द्वारा पर्याप्त मानसिक शिथिलीकरण तथा शांति प्राप्त कर लेना आवश्यक है। इसके बिना ध्यान तक पहुंचना असंभव है ।

(10) आशावाद एवं धैर्य :-ध्यान के अभ्यासी को आशावादी तथा धैर्यवान होना आवश्यक है क्योंकि ध्यान के अभ्यास में तुरंत सफलता नहीं मिलती है। इसमें धैर्यपूर्वक नियमित अभ्यास करते जायें तथा जो भी परिणाम निकले, उसे सहज भाव से स्वीकार करें। घ्यान के अभ्यास के दौरान कई अनुभवों के दौर से गुजरना पड़ता है। इन अनुभवों के दौरान धैर्य तथा आशा के साथ उनका साक्षात्कार करना आवश्यक है;तभी सफलता मिलती है।

6.6 समाधि (Samadhi)

महर्षि पतंजलि ने समाधि की परिभाषा निम्न सूत्र के माध्यम से दी है।

"तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिन समाधिः। (पा० यो० द०3-3)

ध्यान के निरंतर एवं दीर्घ अभ्यास से साधक के मन को किसी प्रकार के अवलम्बन की आवश्यकता नहीं होती है। समाधि की अवस्था में साधक को पूर्ण एकाग्रता तथा ध्येय पर केन्द्रित रहता है । यहाँ ध्येय का अर्थ है वह प्रतीक जिस पर साधक अपने ध्यान को केंद्रित करता है। समाधि की स्थिति में ध्यान करने वाला पूरी तरह से लीन हो जाता है। वह स्वयं को भी ध्यान में समर्पित कर देता है। सम्पूर्ण मन एक तरंग के रूप में परिणत हो जाता है। मन के एकरूपता की यही अवस्था समाधि कहलाती है ।

समाधि का अभ्यास नहीं किया जाता है। ध्यान की स्थिति में दो रहते हैं ध्यान करने वाला तथा ध्येय , जवकि ध्यान करने वाला जब ध्येय के साथ मिलकर एक हो जाता है तो वह समाधि की स्थिति है ।इसमें ध्यान करने वाला ध्येय के साथ मिलकर एक हो जाता है। यह एकत्व ही समाधि का मुख्य लक्षण हैं ।

इस पाठ के अंतर्गत हमने पाया कि धारणा,ध्यान और समाधि पूर्णतः एक-दूसरे पर आधारित है ।धारणा आगे चलकर ध्यान में परिवर्तित हो जाता है तथा ध्यान समाधि में । तीनों के अभ्यास का एक ही मार्ग है ।अतः महर्षि पतंजलि ने तीनों को एक साथ "संयम " का नाम दिया है ।

त्रयमेकत्त संयमः। (पा० यो० ० द०3-4)

इस सूत्र के अनुसार धारणा, ध्यान तथा समाधि को एक साथ संयम कहा जाता है ।इनको जीत लेने से प्रज्ञा का प्रकाश हो जाता है।

जन्जयात्प्रज्ञालोक। (पा० यो० द० 3-5)

संयम को जीत लेने से अर्थात् धारणा, ध्यान तथा समाधि की सिद्धि कर लेने पर प्रज्ञा का प्रकाश प्राप्त हो जाता है। प्रज्ञा के इस प्रकाश का अनुभव केवल उच्च कोटि के योगियों और साधकों को ही प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्तियों के सान्निध्य में विशेष अलौकिक सुख का अनुभव होता है, इसलिए सामान्यतया लोग इनके प्रति आकर्षित होते हैं।

6.7 सारांश (Summary)

इस इकाई में हमने अष्टांग योग के अंतिम सोपान के रूप में धारणा, ध्यान तथा समाधि को जाना। अभ्यास के दृष्टि ये तीनों एक ही हैं, जिसे संयम कहा जाता है। ये मन की एकाग्रता की परम स्थितियाँ हैं, जो योग के साधक का लक्ष्य हैं। वैसे तो इनके अभ्यास की सैंकड़ों विधियाँ हैं। परन्तु, प्रारंभ में अभ्यासी अगोचरी, कायिस्थैम् तथा त्राटक द्वारा अत्यंत सरल तथा प्रभावशाली विधियों से धारणा का अभ्यास करते हैं।

ध्यान के अंतर्गत हम जिन सामान्य नियमों की चर्चा करते हैं, उसमें समय, भोजन, अवधि, अभ्यास का स्थान, वस्तु, निद्रा, सजगता, मानसिक तथा शारीरिक शिक्षा कारण और आशावाद तथा धैर्य को विस्तार से जाना।

धारणा तथा ध्यान के अलावा पूर्व के अभ्यास में प्रत्याहार को बताया गया। प्रत्याहार के अंतर्गत अजपा जप, अंतर्मौन और योग निद्रा के विषय में बताया गया है। ये भी समाधि जाने के लिए परिपूर्ण विधियाँ हैं।

इस पाठ के अंतर्गत हमने जितनी भी विधियों की चर्चा की है, वे सभी स्थैतिक विधियाँ हैं इसके आगे के पाठ में हठ-योग, कर्म-योग, ज्ञान-योग तथा भक्ति योग को जानेंगे । ये विधियाँ संयम तक पहुंचने की गत्यात्मक विधियाँ हैं। अनेक योगियों ने योग के अलग-अलग मार्ग पर संयम को सिद्ध किया। यह साधक की प्रवृत्ति पर निर्भर करता है कि वह किस मार्ग का अनुसरण करेगा व्योंकि हर व्यक्ति के लिए अलग अलग मार्ग उपयुक्त होता है ।